सूर काव्य की भाषागत विशेषता

✧ रामगोपाल मीना

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि तथा 'ब्रजभाषा के वाल्मीकि' सूरदास का काव्य भावना, प्रेम और कला के समन्वय का काव्य है। सूर के काव्य का भाव पक्ष जितना सुदृढ़ है—जिसमें वे कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में नवीन प्रसंगों की उद्भावना करते है, ब्रहम, प्रकृति, जीव, माया, कर्म और भाग्यवाद सम्बन्धी नई धारणाएँ स्थापित करते है, भक्ति के स्वरूप तथा महत्व को स्पष्ट करते है, प्रेम के स्वरूप को रेखांकित करते हुए उसे लोक—मर्यादाओं से युक्त आत्मिक तुष्टि के स्वरूप में प्रतिष्ठित करते है अर्थात् इन सभी तत्वों को एक साथ समन्वित करके वे एक ऐसे सौंदर्य की सृष्टि करते है जो जीवन को देखकर नहीं बल्कि जीवन को स्वयं जीकर पाया जाता है। ''सूर साहित्य में अनुभूति है, कल्पना की उड़ान है, भावना की गहराई है, भक्ति की मान्यता है, मधुरता और सौंदर्य की सृष्टि है। इन सभी गुणों से युक्त सुर का साहित्य है, जिसकी तुलना किसी से करना सूर्य के सामने दीपक रखना है।''1

सूर के काव्य का भावपक्ष जितना सुदृढ़, विविधता भरा और सौंदर्यमययुक्त है, उतना ही उनका कलापक्ष विशिष्ट, वैविध्यपूर्ण और लालित्यपूर्ण है। जिसका सबसे बड़ा कारण सूर का भाषा—प्रयोग है। सूर के काव्य की मुख्य भाषा ब्रज है, जिसको सूर ने जन की बोली से उठाकर तथा उसे अपने भावों की पारसमणि से छूकर साहित्यिक स्तर पर सदा के लिए अमर कर दिया। ब्रजभाषा के क्षेत्र में सूर ने वहीं काम किया जो काम संस्कृत—साहित्य के क्षेत्र में आदिकवि वाल्मीकि ने किया। वाल्मीकि की भाँति सूर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा, कोमलभावों तथा कल्पना द्वारा ब्रजभाषा को साहित्यिक गुणों से ओतप्रोत कर एक भारतीय भाषा के रूप में स्थापित कर सम्मानजनक स्थिति में पहुंचाया। इसी कारण विद्वानों ने सूर को 'ब्रजभाषा के वाल्मीकि' से नवाजा है। ''व्यवस्थित व साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास को ही ब्रजभाषा का आदिकवि माना गया है, वे 'ब्रजभाषा के वाल्मीकि' कहे जाते है।''2 ब्रजभाषा को सूर की साहित्यिक देन के विषय में द्वारिकादास पारीख का भी मत है कि ''संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदिकवि वाल्मीकि का है ब्रजभाषा में वहीं स्थान सूरदास को दिया जा सकता है।''3 'सूरसागर', 'सूरसारावली', और 'साहित्य लहरी' सूर की प्रमुख प्रमाणिक रचनाएं मानी गई है, जिनमें सूर भक्त, कवि व गायक इन तीन रूपों में हमारे सामने आते है। इन तीनों के अनुरूप ही सूर ने ऐसी भाषा को जन्म दिया जिसमें भक्ति और कला के सारे रूप समाहित हो जाते है। जिसमे सूर अपने भावों और विचारों को व्यवस्थित कर अपने अनुभव के समकक्ष बना देते थे, जिससे उनकी भाषा आडम्बरविहीन, कृत्रिमता और बनावटीपन से दूर रही है। तभी ''सूर की भाषा लड़खड़ाती नही है। इसका प्रधान कारण यही है कि वह आडम्बरों में अपने को लपेटकर नहीं चलती, सीधी—साधी बहती है, अपने स्तरों पर चलती है, बनावट से दूर कृत्रिमता से पृथक।''4 भाषा के स्तर पर उनके काव्य का अनुशीलन करने पर पांच प्रमुख विशेषताओं के दिग्दर्शन होते है — पहली कोमलकांत पदावली से युक्त 'सूरसागर' के विनयपदों तथा द्वादश स्कन्धों में इसी भाषा—शैली का प्रयोग किया है। यथा—

'मेरो मन अनत कहां सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवैं।
कमल नैन को छांड़ि महातम और देव को धावै।'
अबिगत—गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरंगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सू निरंतर अमित तौष उपजावै।

दूसरी भावों अनुरूप शब्दों का गठन —
सूरसागर में चौपाई — चौपाई छन्दों में इसी भाषा—शैली को अपनाया है। यथा —

'हरि—हरि—हरि सुमरौ सब कोई
हरि—हरि—हरि सुमिरत सब सुख होई।

तीसरी सार्थक शब्द योजना — सूरसागर के दशम स्कन्धों में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं, गोपियों के संग रास—लीला, राधा—कृष्ण मिलन,उद्वव का ब्रजगमन आदि प्रसंगों में सूर ने अपनी कल्पना और बदलते भावों के अनुरूप, घटनाओं और पात्रों के अनुसार शब्दों का उचित प्रयोग कर अपनी भाषा को जीवन के निकट ला खड़ा किया है। यथा—

जसोदा हरि पालने झुलावै।
'हलरावै, दुलरावै, मल्हावै जोई सोई कुछ गावै।'
बूझत स्याम कौन तू गौरी।
कहां रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कँहु, ब्रज खोरी।

चौथी—भाषा का धारा प्रवाह —'साहित्य लहरी' के दृष्टिकूट पदों, जिसमें की नायिकाओं के मध्या, स्वकीया, परकीया, अभिसारिका, आदि रूपों का चित्रण है—की भाषा में इसी विशेषता के दिग्दर्शन होते है जिसमें सूर बदलते भावों के अनुरूप अपने शब्दों को सजाते है। शब्दों के साथ क्रीड़ा करते है। ''सूर के हृदय में जैसे ही भाव स्फुरित होते हैं वैसे ही शब्द भी क्रीड़ा करते हुए और शब्दों के साथ लगे हुए अक्षर अपने आप स्फुरित होने लगते है।''5 अर्थात सूर की इस कृति में भाषा के सभी उपादान यथा—छन्द, अलंकार, रस आदि प्रचुर मात्रा में मिलते है। उदा0

सोवती थी मैं सजनी आज।
तब लग सुपन एक यह देखों कहत अचंभो साज।
सिव भूषन रिपु भष सुत बैरी पित अरि केर सुभाव।

पांचवी — स्पष्ट चित्रमयता— 'सूरसागर' के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमरगीत सार' के निम्न प्रसंगों यथा—श्रीकृष्ण का उद्वव के प्रति वचन, उद्वव का ब्रज में आना, गोपियों की विरह दशा, उद्वव—गोपी संवाद, उद्वव का वापस मथुरा गमन, तथा श्रीकृष्ण के साथ संवाद, आदि में सूर ने इसी भाषा

शोध सहायक, (हिन्दी सूचना विश्वकोश परियोजना) म.गा.अ.हि.विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र)

शैली को अपनाया है। इन सभी प्रसंगों में सूर ने अपनी वचनवक्रता द्वारा व कोमल कल्पना का समन्वय करते हुए ज्ञान, भक्ति व प्रेम का जो प्रतिपादन किया है जिसके लिए साहित्य जगत सूर का सदा ऋणी रहेगा। उदा0

''ऊधो कहै धन्यब्रजबाला,
जिनके सर्बस मदनगोपाला।
वह मत त्याग्यो, यह मति आई,
तुम्हरे दरस भगति मैं पाई।
तुम मम गुरू मैं दास तुम्हारो,
भगति सुनाय जगत् निस्तारो''।6

सूर की वाक् चातुर्य तथा भाषा की विलक्षण प्रतिभा की विशेषता को इंगित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते है कि ''सूरदास में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता भी है। किसी बात को कहने के न जाने कितने टेढ़े–मेढे ढंग उन्हें मालूम थे।''7 यथा–

'निर्गुण कौन देस को वासी ?
मधुकर हँसि समुझाय, सौह दे बूझति साँच न हाँसि।।'

सूर का साहित्य उनकी भाषा की शक्ति, शब्द सम्पदा व बहुज्ञता को दर्शाता है। सूर दूरदर्शी थे वे इस बात को समझते थे कि जनता के हृदय में कृष्ण भक्ति का बीज अंकुरित करने के लिये जन–सामान्य की बोली में ही पद रचे जाएँ। अतः सूर ने अपने भावों–विचारों को जनता के हृदयपटल तक पहुँचाने के लिए अपनी भाषा में जन–सामान्य के अनुरूप लोकोक्तियों, कहावतों व मुहावरों का सफल प्रयोग किया, क्योंकि जन–सामान्य में यह ज्यादा प्रभावोत्पादक होते है।

आए जोग सिखावन पाँडे
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँडे
हमरे गति–पति कमल नयन की, जोग सिखवते राड़े।

सूर ने पात्र, परिस्थिति तथा भावों के अनुरूप जो शब्द सटीक बैठते थे और आमजन में प्रचलित थे, चाहे वे किसी भी भाषा के क्यों न हो उन सभी का प्रयोग सूर ने किया, इसी कारण उनके साहित्य में संस्कृत, तत्सम्, तद्भव, देशज, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी आदि भाषाओं के असंख्य शब्द देखने को मिलते है। ''कवि के शब्द प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी व्यापक संग्राहक शक्ति। पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उपयुक्त समझा उनका प्रयोग करने में उसे इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी तथा किस उद्गम के है।''8

सूर साहित्य का अंगीरस भक्ति रस है, इस रस में उन्होने वात्सल्य व श्रृंगार रस को प्रमुखता तथा अन्य सभी रसों यथा–शांत, रोद्र, वीर, अद्भुत, भयानक, हास्य, वीभत्स, तथा शांत रसों का समावेश करने का जो कार्य किया है, वह उनकी भाषा व भावों की समाहार शक्ति व बहुज्ञता को दर्शाता है। उदा0

वात्सल्य– ''शोभित कर नवनीत लिए।
घुटरून चलत रेनू, तन मंडित–मुख दधि लेप किए।''

रोद्र– ''भहरात झहरात दावानल आयो

सूर के पदों का काव्योत्कर्ष हालांकि वक्रोक्ति, श्लेष, व्यंग्यार्थ और माधुर्य गुण से सम्पन्न शब्द मैत्री व समन्वय पर निर्भर करता हैं। फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना अतिशयोक्ति आदि अलंकार सूर की काव्य भाषा में सहज ही उमड़े चले आते है जिसके कारण उनकी काव्यभाषा में वाग्विदग्धता, उपचारवक्रता और अभिव्यक्ति के सौंदर्य का विकास हुआ है।

अलंकारों की भांति छन्दों की विविधता से भी सूर काव्य भरा पड़ा है। दोहा, रोला, दोहा चौपाई, कवित, सवैया, छप्पय, कुंडलिया, हरिगितिका आदि छंदों के नये–नये प्रयोग सूर काव्य में देखने को मिलते है। गीतिकाव्य के सभी तत्व यथा–आत्माभिव्यंजन, भावप्रवणता, मधुरता, संगीतात्मकता, एवं संक्षिप्तता तथा सभी राग रागनियां यथा–राग सारंग, राग सोरठ, राग बिलावल, राग रामकली, टोड़ी, नट, कल्याण, मलार, केदार, कान्हरो, बिहागरो, मारू आदि सभी रूप देखने को मिलते है तभी सूर की भाषा के संदर्भ डॉ. हरवंशलाल शर्मा लिखते है कि ''जो कोमलकांत पदावली, संगीतात्मकता, शब्द–चयन, सार्थक अलंकार योजना, धारावाही प्रवाह संगीतात्मकता और सजीवता सूर की भाषा में है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया।''9 सूर की प्रौढ़ व उच्च कोटि की भाषा के संदर्भ में सूर साहित्य के मर्मज्ञ डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा का कथन भी है कि ''उनके द्वारा भाषा की मधुरता, अर्थव्यंजकता और काव्योपयुक्त चित्रण शक्ति की अतीव वृद्वि हुई है। उन्होने भाव, भाषा, अलंकार, उक्ति वैचित्रय, छन्द योजना, संगीतात्मकता, आदि की ऐसी अनूठी सम्पत्ति अपने बाद की नयी पीढ़ियों के लिए इकट्ठी की कि जिसके अंशमात्र को लेकर कितने ही महान कवि बन गये।''10

निष्कर्षतः यह कह सकते है कि सूर के काव्य की भाषा उनके जीवन रूपी काव्य को उद्घाटित करती है जिसमें सूर कवि, भक्त, व गायक के अलावा पौराणिक सूर, रसिक तथा काव्य प्रेमी के रूप में हमारे सामने आते है, उनकी भाषा भी इसी अनुरूप बदलती हुई हमारे सामने आती है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, यज्ञदत्त, सूर साहित्य और सिद्वान्त, पृ0 149
2. शर्मा, 'शास्त्री' वासुदेव, सूरदासः एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ0 89
3. पारीख, द्वारिकादास, सूर निर्णय, पृ0 313
4. शर्मा, यज्ञदत्त, सूर साहित्य और सिद्वान्त, पृ0 68
5. शर्मा डॉ0 मुंशीराम, सूरदास का काव्य–वैभव, पृ0 35
6. शुक्ल, रामचन्द्र (संपा) भ्रमरगीत सार, पृ0 45
7. वही, पृ0 31
8. वर्मा, डॉ0 ब्रजेश्वर सूरदास, पृ0 562
9. शर्मा, डॉ. हरवंशलाल सूर–सरोवर, पृ0 69
10. वर्मा डॉ0 ब्रजेश्वर उद्धृत, प्राचीन काव्य माधुरी (संपा) डॉ0 श्याम सुन्दर दीक्षित, पृ0 13